[2019] 1 उम. नि. प. 303

राम लाल

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

3 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमती और न्यायमूर्ति इंदिरा बनर्जी

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 13(1)(ग) और 13(2) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 409 और 477क] – लोक सेवक द्वारा बैंक में अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान आपराधिक अवचार उसे सौंपे गए धन का दुर्विनियोग और लेखा का मिथ्याकरण किया जाना – जांच के दौरान वरिष्ठ अधिकारियों की समिति के समक्ष अपराध की स्वैच्छिक संस्वीकृति किया जाना – न्यायिकेतर संस्वीकृति की ग्राह्यता – मामले के तथ्यों और साक्षियों के साक्ष्य से यह साबित हो जाने पर कि अभियुक्त ने न्यायिकेतर संस्वीकृति किसी भय, उत्प्रेरण या प्रलोभन के बिना स्वेच्छापूर्वक अपने हस्तलेख में की थी, ऐसी संस्वीकृति के आधार पर की गई दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा, किन्तु व्यतीत समय पर विचार करते हुए सात वर्ष के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष करने से न्याय की पूर्ति हो जाएगी ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, अपीलार्थी-अभियुक्त यूनाइटेड कमर्शियल बैंक में चपरासी के रूप में नियोजित था । उसे लिपिक का काम सौंपा गया था क्योंकि बैंक में लिपिकीय कर्मचारिवृन्द की कमी थी और उसका काम बचत बैंक खाता काउंटर को संभालना था । उसका काम बचत बैंक खातों में जमा करने के लिए खाता धारकों से धन प्राप्त करने का था । वह स्वयं अपने हाथ से उनकी पास बुकों में प्रविष्टि करता था किन्तु बैंक की लेखा बहियों में धन की गणना नहीं करता था और न ही इस धन को खजांची को सौंपता था । अपीलार्थी न तो संदाय-पर्चियां भरता था और न ही स्क्रोल, दैनिक नकद प्राप्ति बही और खजांची द्वारा बनाए रखी गई नकद संदाय बही में कोई निक्षेप करता था और उस धन को अपनी जेब में डाल लेता था । जब जमाकर्ता धन निकालने के लिए उसके पास आते थे तो वह खाता लेखाओं में जाली जमा प्रविष्टियां कर देता था और निकासी पर्चियों में रकम भर देता था तथा इन्हें संदाय के लिए संबंधित अधिकारी को प्रस्तुत कर देता था । पास करने वाला अधिकारी जाली जमा प्रविष्टि से

भ्रमित होकर निकासियों को मंजूर कर देता था । इस प्रकार, अपीलार्थी ने वर्ष 1994 के दौरान बैंक को 38,500/- रुपए की दोषपूर्ण हानि कारित की । जब कपट प्रकाश में आया, तो दो अधिकारियों की एक समिति को अर्थात् आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) और एम. पी. सेठी को आरंभिक जांच करने के लिए तैनात किया गया और समिति ने खातों में अपीलार्थी द्वारा की गई गड़बड़ियां पाईं । इसके पश्चात्, जांच समिति ने मामले में संपूर्ण अन्वेषण करने की सिफारिश की । आरंभिक जांच के पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 471, 477क और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी को उक्त अपराधों के लिए आरोप-पत्रित किया गया । विचारण न्यायालय ने उस भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) और बैंक के साथ कपट-वंचना करने के आशय से लेखा का मिथ्याकरण करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 477क के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और उसे 5000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित पांच वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेश साथ-साथ चलने का निदेश दिया गया । अपीलार्थी ने दोषसिद्धि से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जिसे आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थिर है कि किसी स्वैच्छिक संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है, किंतु प्रज्ञा का नियम यह अपेक्षा करता है कि जहां-कहीं संभव हो, स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि की जानी चाहिए । अभियुक्त की न्यायिकेतर संस्वीकृति की सभी मामलों में संपुष्टि करने की आवश्यकता नहीं होती है । यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि संस्वीकृति स्वैच्छिक है, तो उसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । प्रज्ञा का नियम यह अपेक्षा नहीं करता है कि अभियुक्त की सहभागिता के विषय में संस्वीकृति में वर्णित प्रत्येक परिस्थिति की अवश्य ही अलग-अलग और स्वतंत्र रूप से संपुष्टि की जानी चाहिए । प्रस्तुत मामले में, जैसा कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख

किया गया है, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) और आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) बैंक के ज्येष्ठ अधिकारी थे और तारीख 23 अप्रैल, 1994 को जब वे निरीक्षण करने के लिए बैंक पहुंचे, तो अभियुक्त ने अपना संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए) प्रस्तुत किया । इसी तरह, आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) द्वारा की गई जांच में अभियुक्त ने संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए) दिया था । अपीलार्थी की दलील यह है कि अभि. सा. 2 और 3 के उच्चतर पदधारी होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त द्वारा संस्वीकृति कथन स्वेच्छा से किया गया था और यह कथन अवश्य ही उत्प्रेरणा या कृपा करने के मिथ्या वचन के अधीन किया गया था । न्यायालय की राय में, भय या उत्प्रेरणा का मात्र अभिकथन पर्याप्त नहीं है, ऐसी उत्प्रेरणा अभियुक्त के मस्तिष्क में ऐसा युक्तियुक्त विश्वास कारित करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए कि ऐसी संस्वीकृति करने से इसे फायदा प्राप्त होगा । जैसा कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, यद्यपि अपीलार्थी द्वारा संस्वीकृति कथन प्रारंभ में आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) और एम. पी. सेठी की मौजूदगी में किया गया था, किंतु आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) से ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया गया था कि न्यायिकेतर संस्वीकृति किसी भय, उत्प्रेरणा या प्रलोभन के परिणामस्वरूप की गई थी । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कथन जो ग्यारह पन्नों का है, उसे अपीलार्थी द्वारा स्वेच्छा से किया गया था । इसी प्रकार, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) के समक्ष किया गया संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए) अपीलार्थी के हस्तलेख में था और आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) और एच. ओ. अग्रवाल, तत्कालीन सहायक मुख्य अधिकारी (निरीक्षण) की मौजूदगी में किया गया था । पुनः, यहां भी, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) से यह नहीं कहा गया था कि प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए किसी प्रकार के भय या दबाव का परिणाम है । विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए और पी.डब्ल्यू. 2/ए) स्वेच्छा से किए गए थे और यह कि ये कथन दोषसिद्धि का आधार बन सकते हैं । यह न्यायालय उक्त समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई उचित आधार नहीं पाता है । जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) के अधीन दोषसिद्धि का संबंध है, अपीलार्थी को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 477क के अधीन दोषसिद्धि के लिए अपीलार्थी को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया

गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन दोषसिद्धि के लिए अपीलार्थी को पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । घटना वर्ष 1992-94 की है । व्यतीत समय और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश के कारावास को कम करके तीन वर्ष किया जाता है । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 403 : **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	13
[2007]	(2007) 12 एस. सी. सी. 341 : **अजय सिंह** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	12
[1992]	(1992) 3 एस. सी. सी. 204 : **मदन गोपाल कक्कड़** बनाम **नवल दूबे और एक अन्य** ;	12, 14
[1977]	(1977) 4 एस. सी. सी. 152 : **प्यारा सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ।	14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 576. (इसके साथ 2010 की दांडिक अपील सं. 577 और 578)

2010 की दांडिक अपील सं. 710 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला के तारीख 22 दिसम्बर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री एस. हरि हरन, विकास सिंह, इजार मकबूल और अमित सिंह चौहान

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री अभिनव मुखजी, अपर महाधिवक्ता, सुश्री बिहु शर्मा और सुश्री पूर्णिमा कृष्ण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमती ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) बानुमती – ये अपीलें 2000 की दांडिक अपील सं. 710-712 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला द्वारा तारीख 22 दिसम्बर,

2008 को पारित किए गए उस निर्णय से उद्भूत हुई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) और भारतीय दंड संहिता की धारा 409 और 477क के अधीन दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित कारावास के दंडादेश की अभिपुष्टि करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की अभिपुष्टि की ।

2. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अभियुक्त जनवरी, 1987 में यूनाइटेड कमर्शियल बैंक में चपरासी के रूप में नियोजित था । उसे लिपिक का काम सौंपा गया था क्योंकि बैंक में लिपिकीय कर्मचारिवृन्द की कमी थी और उसका काम बचत बैंक खाता काउंटर को संभालना था । उसका काम बचत बैंक खातों में जमा करने के लिए खाता धारकों से धन प्राप्त करने का था । वह स्वयं अपने हाथ से उनकी पास बुकों में प्रविष्टि करता था किन्तु बैंक की लेखा बहियों में धन की गणना नहीं करता था और न ही इस धन को खजांची को सौंपता था । यह अभिकथित है कि अपीलार्थी न तो संदाय-पर्चियां भरता था और न ही स्क्रोल, दैनिक नकद प्राप्ति बही और खजांची द्वारा बनाए रखी गई नकद संदाय बही में कोई निक्षेप करता था और उस धन को अपनी जेब में डाल लेता था । जब जमाकर्ता धन निकालने के लिए उसके पास आते थे तो वह खाता लेखाओं में जाली जमा प्रविष्टियां कर देता था और निकासी पर्चियों में रकम भर देता था तथा इन्हें संदाय के लिए संबंधित अधिकारी को प्रस्तुत कर देता था । पास करने वाला अधिकारी जाली जमा प्रविष्टि से भ्रमित होकर निकासियों को मंजूर कर देता था । इस प्रकार, अपीलार्थी ने वर्ष 1994 के दौरान बैंक को 38,500/- रुपए की दोषपूर्ण हानि कारित की । जब कपट प्रकाश में आया, तो दो अधिकारियों की एक समिति को अर्थात् आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) और एम. पी. सेठी को आरंभिक जांच करने के लिए तैनात किया गया और समिति ने खातों में अपीलार्थी द्वारा की गई गड़बड़ियां पाईं । इसके पश्चात्, जांच समिति ने मामले में संपूर्ण अन्वेषण करने की सिफारिश की । आरंभिक जांच के पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 471, 477क और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी को उक्त अपराधों के लिए आरोप-पत्रित किया गया ।

3. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए तेरह साक्षियों की परीक्षा की और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया । विचारण

न्यायालय ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के उपरांत यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी ने एक लोक सेवक के रूप में अपनी हैसियत में अपने कर्तव्य के निर्वहन में, एक लोक सेवक के रूप में उसे सौंपे गए धन का दुर्विनियोग किया है । विचारण न्यायालय ने उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) और बैंक के साथ कपट-वंचना करने के आशय से लेखा का मिथ्याकरण करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 477क के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और उसे 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित पांच वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेश साथ-साथ चलने का निदेश दिया गया । तथापि, अपीलार्थी को कूटरचना के आरोप के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 468 और 471 के अधीन अपराधों से यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषमुक्त कर दिया गया कि विशेषज्ञ की राय ठीक-ठाक नहीं है । अपीलार्थी ने दोषसिद्धि से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जिसे आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया ।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी बैंक में एक चपरासी के रूप में कार्यरत था और बैंक के नियमों के अनुसार चपरासी/उप-कर्मचारिवृन्द को कोई लिपिकीय काम नहीं सौंपा जा सकता है और यह बात बैंक के अधिकारियों अर्थात् प्रेम चंद (अभि. सा. 1) आर. के. सोनी (अभि. सा. 2), आर. सी छाबड़ा (अभि. सा. 3) और ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10) द्वारा स्वीकार की गई थी । यह दलील दी गई कि जब किसी कर्मचारी को उसके कर्तव्य से भिन्न कोई विशिष्ट काम सौंपा जाता है, तब प्रबंधक को अनुमित रूप से कार्यालय आदेश/कर्तव्य-पत्र जारी करना होता है, जबकि प्रस्तुत मामले में अभिलेख पर कोई कार्यालय आदेश/कर्तव्य-पत्र यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है कि अपीलार्थी को यथा अभिकथित लिपिकीय काम सौंपा गया था । अपीलार्थी ने मुख्य रूप से संस्वीकृति कथन को यह दलील देते हुए चुनौती दी कि उसने स्वेच्छया कोई संस्वीकृति कथन नहीं किया था और संस्वीकृति कथन को दोषसिद्धि के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता था ।

5. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी ने विभिन्न खाता धारकों के खातों में मिथ्या जमा और निकासी प्रविष्टियां

करके बैंक के साथ कपट-वंचना करने के लिए बेईमानी के आशय से कार्य किया और तद्द्वारा बैंक की लेखा बहियों का मिथ्याकरण किया और निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी को बैंक के साथ कपट-वंचना करने के लिए ठीक ही दोषसिद्ध किया है तथा आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

6. हमने विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और आक्षेपित निर्णय तथा अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य और सामग्री का परिशीलन किया है ।

7. यूको बैंक, नरवा शाखा के तत्कालीन प्रबंधक, ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया कि अपीलार्थी, जो शाखा में चपरासी था, कर्मचारिवृंद की कमी के कारण रोकड़ लिपिक का कार्य कर रहा था । उसने यह भी कथन किया कि जब अपीलार्थी रोकड़ लिपिक के रूप में यह कार्य कर रहा था, तब वह जमाकर्ताओं से उनके बचत बैंक खातों में जमा करने के लिए नकदी प्राप्त करता था और उसी समय रोकड़ बही में प्रविष्टियां करता था और ग्राहकों को पास बुक वापस कर देता था तथा उसे दी गई नकदी अपनी जेब में रख लेता था और खाते में कोई जमा की प्रविष्टि नहीं करता था । ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10) ने यह भी कथन किया कि सामान्यतः जमा पर्ची स्वयं जमाकर्ता द्वारा भरी जाती है, किंतु अपीलार्थी-राम लाल धन को अपनी जेब में डालने के लिए स्वयं जमा पर्ची भरता था । अभि. सा. 10 ने आगे यह भी कथन किया कि बाद में जब जमाकर्ता अपने बचत बैंक खातों से नकदी निकालने के लिए बैंक में आते थे, तो अपीलार्थी-राम लाल खाता बहियों में मिथ्या जमा प्रविष्टियां कर देता था और उनके खातों में निकासी प्रविष्टि करने के पश्चात् वह ग्राहकों को नकदी सौंप देता था ।

8. निस्संदेह, चपरासी की ड्यूटी कार्यालय की साफ-सफाई करने और फाइलों आदि को इधर-से-उधर देने का अन्य कार्य था । निस्संदेह, अपीलार्थी को लिपिकीय संवर्ग के कर्तव्य पूरा करने के लिए प्राधिकृत करने वाला लिखित में कोई कार्यालय आदेश नहीं था । किंतु, ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया कि यद्यपि, लिपिकीय संवर्ग का कार्य करने के लिए अपीलार्थी को प्राधिकृत करने वाला कोई कार्यालय आदेश नहीं था, किंतु उसने मुख्यालय को सूचित किया था कि अपीलार्थी कर्मचारिवृंद की कमी के कारण रोकड़ लिपिक का कार्य कर रहा है । इस संबंध में, आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3), यूको बैंक के

तत्कालीन उप मुख्य अधिकारी ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी जैसा चपरासी लिपिकीय संवर्ग का कार्य करने के लिए प्राधिकृत नहीं था । अभि. सा. 3 ने यह कथन किया है कि ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10) और नरवा शाखा के अन्य पदधारी अर्थात् एस. एस. राणा, बी. एस. गुलेरिया अपीलार्थी को इस प्रकार लिपिकीय कार्य सौंपने में अपने कर्तव्यों के प्रति उपेक्षावान थे । तथापि, अभि. सा. 3 ने तुरत-फुरत यह भी कहा कि यह नहीं कहा जा सकता है कि वे अधिकारी ए. के. गुप्ता (अभि. सा. 10), एस. एस. राणा (अभि. सा. 11) और बी. एस. गुलेरिया कपट कारित करने के कृत्य के लिए उत्तरदायी थे । अपीलार्थी की इस दलील में कोई सार नहीं है कि उसे लिपिकीय कार्य करने के लिए प्राधिकृत करने वाले कार्यालय आदेश के अभाव में, उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है ।

9. आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) यूको बैंक, प्रभागीय कार्यालय, शिमला के तत्कालीन उप मुख्य अधिकारी थे, जिसने यूको बैंक, नरवा शाखा का सुसंगत समय पर निरीक्षण किया था । आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) आंचलिक कार्यालय, शिमला में ग्रेड-1 अधिकारी थे और उन्होंने भी वर्ष 1994 में यूको बैंक, नरवा शाखा का निरीक्षण किया था । आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) ने यह कथन किया कि अपीलार्थी ने स्वयं अपने हाथ से, एम. पी. सेठी की मौजूदगी में संस्वीकृति कथन लिखा था और उस पर हस्ताक्षर किए थे, जो रिपोर्ट प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए का भाग था । बचत बैंक खातों के बारे में सारणीबद्ध विवरण के तेरह पन्ने हैं, जिनमें जाली जमा प्रविष्टियों का पता लगाया गया है । इन विवरणियों के पाद-भाग में अपीलार्थी ने स्वयं अपने हाथ से और अपने हस्ताक्षर करके लिखा है कि उसने विवरणियों में नामित खाता धारकों से धन उनके खातों में जमा करने के लिए प्राप्त किया था, किन्तु बैंक की संबंधित लेखा बहियों में उस धन का लेखा-जोखा देने की बजाए उसने (अपीलार्थी) इसका दुर्विनियोग किया और बाद में जाली जमा प्रविष्टियां बनाईं और प्रबंधक के कूटरचित अद्योहस्ताक्षर किए ।

10. आरंभिक जांच करने के पश्चात्, प्रभागीय कार्यालय ने दो ज्येष्ठ अधिकारियों अर्थात् आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) और एच. ओ. अग्रवाल को नामनिर्देशित किया, जिन्होंने 202 पृष्ठों की रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे अन्वेषण रिपोर्ट प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए का भाग बनाया गया है । आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) ने अपने साक्ष्य में यह अभिसाक्ष्य दिया कि रिपोर्ट प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए के पृष्ठों (143) और (144) पर लेखन अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा स्वेच्छया स्वयं अपने हस्तलेख में उसकी मौजूदगी में और

उसके सह-अन्वेषक एच. ओ. अग्रवाल की मौजूदगी में किया गया था और अपीलार्थी-अभियुक्त ने विभिन्न खाता-धारकों से उनके बचत बैंक खातों में जमा करने के लिए धन प्राप्त करने और उनकी पास बुकों में प्रविष्टियां करने की बात स्वीकार की थी । अपीलार्थी ने अपने संस्वीकृति कथन में यह भी स्वीकार किया कि उसने धन को हिसाब में नहीं लिया था अपितु उस धन दुर्विनियोग किया था और जब खाता-धारक धन निकालने के लिए बैंक में आते थे, तो वह उनके लेखा के खाता फोलियो में जाली जमा प्रविष्टि कर देता था और उन जाली प्रविष्टियों के आधार पर धन निकासी की जाती थी ।

11. अपीलार्थी की यह दलील है कि उसका संस्वीकृति कथन स्वैच्छिक नहीं था और अभि. सा. 2 और 3 वे प्राधिकारवान व्यक्ति थे जिन्होंने अपीलार्थी पर संस्वीकृति करने के लिए दबाव डाला था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए और प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए स्वेच्छा से किए गए थे और इनके आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है ।

12. **अजय सिंह** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि न्यायिकेतर संस्वीकृति केवल तब दोषसिद्धि का आधार हो सकती है यदि यह संस्वीकृति स्वैच्छिक है और जिस व्यक्ति के समक्ष संस्वीकृति की जाती है वह निष्पक्ष होना चाहिए और अभियुक्त से दुश्मनी नहीं होनी चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने **मदन गोपाल कक्कड़** बनाम **नवल दूबे और एक अन्य**[2] वाले मामले में यह दलील देने के लिए अवलंब लिया कि अभियुक्त की न्यायिकेतर संस्वीकृति प्रपीड़न द्वारा, कृपा करने का वचन देकर अभिप्राप्त नहीं की जानी चाहिए और यह दोषिता की अभिस्वीकृति करते हुए स्वैच्छिक प्रकृति की होनी चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि जिन अधिकारियों ने अपीलार्थी की न्यायिकेतर संस्वीकृति (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए और पी.डब्ल्यू. 2/ए) अभिप्राप्त की थी, उनका कार्रवाई करने के लिए अन्य निहित हित था और अपीलार्थी को चपरासी होने के कारण आरोपों से मुक्त करने का झूठा आश्वासन देकर अवश्य विलुब्ध किया गया होगा ।

13. न्यायिकेतर संस्वीकृति एक कमजोर साक्ष्य होता है और

---

[1] (2007) 12 एस. सी. सी. 341.

[2] (1992) 3 एस. सी. सी. 204.

न्यायालय को अवश्य यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसी न्यायिकेतर संस्वीकृति विश्वासोत्पादक हो और उसकी संपुष्टि अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा होती हो । न्यायिकेतर संस्वीकृति स्वीकार करने के लिए, यह अवश्य स्वैच्छिक होनी चाहिए और अवश्य विश्वासोत्पादक होनी चाहिए । यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति स्वैच्छिक है, तो इसके आधार पर दोषसिद्ध करने की कार्रवाई की जा सकती है । **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में न्यायिकेतर संस्वीकृति की ग्राह्यता और इसके साक्ष्यिक महत्व पर विचार करते हुए विभिन्न निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "15.1. बलविंदर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(1995) 4 (सप्ली.) एस. सी. सी. 259] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस सिद्धांत का उल्लेख किया था कि –
>
> > '10. न्यायिकेतर संस्वीकृति अपनी प्रकृति से ही एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और अत्यधिक सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है । जहां कोई न्यायिकेतर संस्वीकृति संदेहास्पद परिस्थितियों से परिवेष्टित है, तो उसकी विश्वसनीयता शंकास्पद हो जाती है और वह अपना महत्व खो देती है ।'
>
> 15.4 राजस्थान राज्य **बनाम** राजा राम [(2003) 8 एस. सी. सी. 180] वाले मामले में इस न्यायालय ने न्यायिकेतर संस्वीकृति की ग्राह्यता और साक्ष्यिक महत्व को शासित करने वाले सिद्धांतों के आयामों को स्पष्ट करते हुए इस सिद्धांत का उल्लेख किया कि –
>
> > '19. न्यायिकेतर संस्वीकृति यदि स्वैच्छिक और सत्य है तथा सही मानसिक हालत में की जाती है, तो न्यायालय द्वारा उसका अवलंब लिया जा सकता है । संस्वीकृति को किसी अन्य तथ्य की तरह साबित किया जाना होगा । संस्वीकृति विषयक साक्ष्य का महत्व किसी अन्य साक्ष्य की तरह उस साक्षी की सत्यता पर निर्भर करता है जिसके समक्ष यह संस्वीकृति की गई है ।'

---

[1] (2012) 6 एस. सी. सी. 403.

न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है –

> '19. ..... ऐसी संस्वीकृति का अवलंब लिया जा सकता है और उसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है, यदि संस्वीकृति के बारे में साक्ष्य ऐसे साक्षियों के मुख से आता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हों, दूर-दूर तक भी अभियुक्त से दुश्मनी न हो, और जिसके बारे में ऐसा कुछ न लाया गया हो जिसे यह उपदर्शित हो सकता हो कि उसका अभियुक्त के प्रति असत्य कथन करने का हेतु हो सकता है .....।'

15.6 संसार चंद **बनाम** राजस्थान राज्य [(2010) 10 एस. सी. सी. 604] वाले मामले में न्यायिकेतर संस्वीकृति की ग्राह्यता को स्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि –

> '29. ऐसा कोई आत्यंतिक नियम नहीं है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति कदापि दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकती है, यद्यपि सामान्यतया न्यायिकेतर संस्वीकृति की संपुष्टि किसी सामग्री से की जानी चाहिए । थिम्मा और थिम्मा राजू **बनाम** मैसूर राज्य [(1970) 2 एस. सी. सी. 105], मुल्क राज **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक, [(2006) 1 एस. सी. सी. 714 (एस. सी. सी. का पैरा 40 और 41 = ए. आई. आर. का पैरा 41 और 42], शिवा करम पायास्वामी तिवारी **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(2009) 11 एस. सी. सी. 262] और मोहम्मद आजाद **उर्फ** शमीन **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य [(2008) 15 एस. सी. सी. 4493 वाले मामले देखें] ।'

14. यह सुस्थिर है कि किसी स्वैच्छिक संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है, किंतु प्रज्ञा का नियम यह अपेक्षा करता है कि जहां-कहीं संभव हो, स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि की जानी चाहिए । अभियुक्त की न्यायिकेतर संस्वीकृति की सभी मामलों में संपुष्टि करने की आवश्यकता नहीं होती है । **मदन गोपाल कक्कड़** बनाम **नवल दूबे और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **प्यारा सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि विधि यह अपेक्षा नहीं करती है कि न्यायिकेतर

---

[1] (1977) 4 एस. सी. सी. 152.

संस्वीकृति के साक्ष्य की सभी मामलों में संपुष्टि की जानी चाहिए । प्रज्ञा का नियम यह अपेक्षा नहीं करता है कि संस्वीकृति में वर्णित प्रत्येक परिस्थिति की अवश्य अलग-अलग और स्वतंत्र रूप से संपुष्टि होनी चाहिए ।

15. जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि संस्वीकृति स्वैच्छिक है, तो उसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । प्रज्ञा का नियम यह अपेक्षा नहीं करता है कि अभियुक्त की सहभागिता के विषय में संस्वीकृति में वर्णित प्रत्येक परिस्थिति की अवश्य ही अलग-अलग और स्वतंत्र रूप से संपुष्टि की जानी चाहिए । प्रस्तुत मामले में, जैसा कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) और आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) बैंक के ज्येष्ठ अधिकारी थे और तारीख 23 अप्रैल, 1994 को जब वे निरीक्षण करने के लिए बैंक पहुंचे, तो अभियुक्त ने अपना संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए) प्रस्तुत किया । इसी तरह, आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) द्वारा की गई जांच में अभियुक्त ने संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए) दिया था ।

16. अपीलार्थी की दलील यह है कि अभि. सा. 2 और 3 के उच्चतर पदधारी होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त द्वारा संस्वीकृति कथन स्वेच्छा से किया गया था और यह कथन अवश्य ही उत्प्रेरणा या कृपा करने के मिथ्या वचन के अधीन किया गया था । न्यायालय की राय में, भय या उत्प्रेरणा का मात्र अभिकथन पर्याप्त नहीं है, ऐसी उत्प्रेरणा अभियुक्त के मस्तिष्क में ऐसा युक्तियुक्त विश्वास कारित करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए कि ऐसी संस्वीकृति करने से इसे फायदा प्राप्त होगा । जैसा कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, यद्यपि अपीलार्थी द्वारा संस्वीकृति कथन प्रारंभ में आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) और एम. पी. सेठी की मौजूदगी में किया गया था, किंतु आर. सी. छाबड़ा (अभि. सा. 3) से ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया गया था कि न्यायिकेतर संस्वीकृति (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए) किसी भय, उत्प्रेरणा या प्रलोभन के परिणामस्वरूप की गई थी । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कथन जो ग्यारह पन्नों का है, उसे अपीलार्थी द्वारा स्वेच्छा से किया गया था । इसी प्रकार, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) के समक्ष किया गया संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए) अपीलार्थी के हस्तलेख में था और आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) और एच. ओ.

अग्रवाल, तत्कालीन सहायक मुख्य अधिकारी (निरीक्षण) की मौजूदगी में किया गया था । पुनः , यहां भी, आर. के. सोनी (अभि. सा. 2) से यह नहीं कहा गया था कि प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए किसी प्रकार के भय या दबाव का परिणाम है । विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए और पी.डब्ल्यू. 2/ए) स्वेच्छा से किए गए थे और यह कि ये कथन दोषसिद्धि का आधार बन सकते हैं । हम उक्त समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई उचित आधार नहीं पाते हैं ।

17. जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) के अधीन दोषसिद्धि का संबंध है, अपीलार्थी को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 477क के अधीन दोषसिद्धि के लिए अपीलार्थी को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन दोषसिद्धि के लिए अपीलार्थी को पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । घटना वर्ष 1992-94 की है । व्यतीत समय और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश के कारावास को कम करके तीन वर्ष किया जाता है ।

18. परिणामतः, अपीलार्थी की भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(ग) के अधीन दोषसिद्धि और दो वर्ष के कारावास के दंडादेश की पुष्टि की जाती है । भारतीय दंड संहिता की धारा 477क और 409 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है और भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष किया जाता है । तद्नुसार, ये अपीलें भागतः, मंजूर की जाती हैं । अपीलार्थी शेष दंडादेश भुगतने के लिए आज से चार सप्ताह के भीतर स्वयं को अभ्यर्पित करेगा और अभ्यर्पण न करने पर अपीलार्थी को अभिरक्षा में लिया जाएगा ।

अपीलें भागतः मंजूर की गईं ।

जस.